मुन्शी प्रेमचन्द

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रश्न 1. प्रेमचन्दजी के जीवन-वृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—जीवन-वृत्त—कहानी-कला को नवीन दृष्टि एवं दिशा प्रदान कर युगान्तर प्रस्तुत करने वाले श्री प्रेमचन्द्रजी का जन्म सन् 1880 ई. में बनारस के पांडेपुर ग्राम के एक छोटे से पुरवा 'लमही' में एक कुलीन कायस्थ परिवार में हुआ। उनका यह पुनीत जन्म-स्थान वाराणसी से लगभग पाँच-छः मील दूर है। इनके पिता का नाम श्री अजायबराय और पूज्या माता का नाम आनन्दी देवी था। परिवार का मुख्य व्यवसाय कृषि था, जिससे पालन-पोषण के लिए उपयुक्त आय नहीं हो पाती थी। अन्त में इनके पिता को विवश होकर डाकखाने में बीस रुपये मासिक की क्लर्की करनी पड़ी। श्री प्रेमचन्द के जन्म के साथ वे इसी नौकरी में थे। निर्धनता के कारण परिवार का पालन-पोषण बड़ी कठिनाई से हो पाता था।

बाल्यकाल से ही विषम परिस्थितियों की अनुभूति—श्री प्रेमचन्द्र के पिता यद्यपि अब किसान न रह गये थे, किन्तु उनके घर का वातावरण अब भी किसानों जैसा था। निस्सन्देह परिवार का जीवन-स्तर निम्न-मध्य वर्ग का था। श्री प्रेमचन्द को इसी कारण बाल्यकाल से ही न केवल अभाव, असुविधा, अभिभूति, कृषक-जीवन की अनुभूति हुई वरन् निम्न वर्ग की समस्त कठिनाइयों एवं विपत्तियों को साकार देखने का अवसर मिला। यही नहीं, उन्होंने कष्टप्रद परिस्थितियों से संघर्ष करने की क्षमता भी प्राप्त की। बालक प्रेमचन्द की छोटी से छोटी इच्छाएँ भी पूरी नहीं हो पाती थीं और वे मन मसोसकर रह जाते थे। अन्तर्जगत् में विप्लव की चिनगारी चमक कर रह जाती थी। अपूर्ण अभिलाषाओं की इन दरिद्रताजन्य जीवन परिस्थितियों से जूझते हुए वे जीवन-पथ पर अग्रसर होते चले गये। जीवन की इन विषम परिस्थितियों ने इन होनहार कथाशिल्पी की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। समय आने पर जीवन का यह कटुयथार्थ उनके कथा-शिल्प का मर्मस्पर्शी प्रतिपाद्य बना।

अल्पायु में ही मातृ तथा पितृ-स्नेह से वंचित—श्री प्रेमचन्द की तीन बहनें थीं। दो की अकाल मृत्यु हो गई और एक बहुत दिनों तक जीवित रहीं। जब प्रेमचन्द आठ वर्ष के ही थे, उनकी वात्सल्यमयी माता आनन्दी देवी भी छः मास रुग्ण-शय्या पर रहने के पश्चात् दिवंगत हो गईं। इस प्रकार वे अल्पायु में ही मातृ-स्नेह से वंचित हो गये। प्रेमचन्द का बचपन का नाम धनपतराय था, किन्तु इनके चाचा इन्हें नवाबराय के नाम से पुकारते थे। प्रेमचन्द का पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही विवाह हो गया, किन्तु दाम्पत्य जीवन सुखद न रहा। इनकी पत्नी इनसे अवस्था में बड़ी और अत्यन्त कुरूप थीं। इसके अतिरिक्त वह

जवान की तेज़-तर्रार और कलह-प्रिय थी, जिससे घर विषाद-मग्न रहता था। अन्त में प्रेमचन्द ने उनका परित्याग कर शिवरानी से विवाह कर लिया। शिवरानी बाल-विधवा थीं। सोलह वर्ष की अवस्था में प्रेमचन्दजी के ऊपर से पिता का साया भी उठ गया। बेचारे प्रेमचन्द अल्पायु में ही मातृ तथा पितृ-स्नेह से वंचित हो गये।

शिक्षा-दीक्षा—पाँच वर्ष की अवस्था में प्रेमचन्द की शिक्षा का प्रारम्भ एक मौलवी साहब के पास हुआ। पुरानी पीढ़ी के पिता ने उर्दू में अभिरुचि होने के कारण उर्दू की शिक्षा दिलवाई। धीरे-धीरे प्रेमचन्द का इस भाषा पर अधिकार होने लगा। चार वर्ष बाद उनके पिता की जमनिपुर में बदली हो गई। आर्थिक अभाव से पीड़ित पिता ने वहाँ डेढ रुपये मासिक का एक बहुत ही गन्दा मकान किराये पर लिया। मकान इतना गन्दा था कि प्रेमचन्द वहाँ न रह पाते और एक तम्बाकू वाले के मकान में चले जाया करते थे। त्रयोदश वर्षीय प्रेमचन्द को मिशन स्कूल की छठी कक्षा में प्रवेश दिलाया गया। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में प्रेमचन्द काशी आये, जहाँ वे नवीं कक्षा में पढ़ने लगे। इसी बीच उनके पिता की मृत्यु हो गई और उनके ट्यूशन द्वारा जीवन-निर्वाह का आश्रय लेना पड़ा। प्रातः बेला में वे पाँच-छः मील पैदल चलकर शहर पहुँचते, पढ़ाई के पश्चात् ट्यूशन करते और फिर पैदल ही रात के आठ बजे तक घर लौटते। इन कष्टमय परिस्थितियों में भी उन्होंने अन्त में द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। प्रेमचन्द तेल की कुप्पी जलाकर पढ़ते थे और जो कुछ रूखा-सूखा मिल जाता, उसे ही खाकर सन्तुष्ट रहते थे। किन्तु इतने पर भी जीवट इतनी थी कि उन्होंने कठिनाइयों के सामने घुटने नहीं टेके और इण्टर की परीक्षा पास करने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहे। इण्टर में गणित की अनिवार्यता के कारण उन्हें कई बार असफल भी होना पड़ा। अन्त में जब गणित ऐच्छिक विषय हो गया, तब वे सन् 1910 ई. में जैसे-तैसे इण्टर की परीक्षा में सफल हुए। इन्हीं दिनों उन्हें महाजनों के कटु एवं निर्मम व्यवहार का भी अनुभव हुआ। आर्थिक अभावों के शिकार प्रेमचन्दजी को महाजनों से रुपया जो उधार लेना होता था। बाद में उन्होंने व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में सन् 1919 ई. में बी. ए. की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली।

जीविका के विविध आयाम—प्रेमचन्दजी की जीविका का प्रमुख साधन अध्यापन था। मैट्रिक के बाद ही उन्हें एक छोटे से स्कूल में अठारह रुपये मासिक पर अध्यापन कार्य मिल गया था। बाद में वे गोरखपुर, कानपुर, वाराणसी और बस्ती आदि स्थानों में अध्यापक रहे। इसके बाद प्रगति करते-करते वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में सब-डिप्टी इन्सपेक्टर हो गये। वे उक्त पद पर बारह वर्ष रहे और सफलतापूर्वक कार्य किया। सब-इन्सपेक्टर के रूप में उन्होंने महोबे के जीवन का भी अध्ययन किया। इस सेवा-काल में उन्होंने न केवल अपने जीवन के कटु अनुभव किये वरन् भारत के एक विशाल भू-भाग की जनता का निर्धनता पीड़ित हृदय-द्रावक दृश्य भी देखा, जिसका चित्रण उनके साहित्य में दृष्टव्य है।

सरकारी-सेवा से त्याग-पत्र—सन् 1920 में प्रेमचन्द जब सब-डिप्टी इन्सपेक्टर के पद पर कार्य कर रहे थे, सम्पूर्ण देश का दौरा करते हुए महात्मा गाँधीजी के व्यक्तित्व एवं विचारों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तुरन्त सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया।

फिर वह सरस्वती वरद-पुत्र साहित्य-साधना में ही तत्पर हो गया। साहित्य-सृजन उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य बन गया।

साहित्य-साधना की ओर प्रेरणा-ग्रहण—साहित्य के अध्ययन एवं प्रणयन की ओर आरम्भ से ही उनकी रुचि थी। घोर आर्थिक संकटों से संघर्ष करते हुए भी वे निरन्तर अध्ययन करते रहे और लिखते भी रहे। उनकी पत्नी शिवरानी के कथनानुसार बचपन से ही उन्हें पढ़ने-लिखने की रुचि थी। एक तम्बाकू व्यवसायी का लड़का उनका दोस्त था। वे उसकी दुकान पर जाकर तम्बाकू के पिण्डों के पीछे बैठकर 'तिलस्म होशरुबा' पढ़ा करते थे। इस वृहत् तिलस्मी रचना को उन्होंने बड़ी रुचि से पढ़ा। यहीं से उनकी प्रतिभा साहित्य-रचना की प्रेरणा ग्रहण कर सकी। तेरह वर्ष की अवस्था तक तो उन्होंने उर्दू के अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ पढ़ डाले थे। मौलाना शरर, रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा और मौलवी मुहम्मद अली आदि की रचनाओं को उन्होंने बड़े चाव से पढ़ा। सरशार द्वारा रचित 'फसाने आजाद' तो उनको इतना रुचिकर हुआ कि आगे चलकर उन्होंने उसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। निर्धन होते हुए भी वे परिश्रम एवं ईमानदारी से अर्थोपार्जन करके उपन्यास पढ़ते थे। ज्यों-ज्यों आर्थिक कठिनाइयाँ भीषण होती गयीं, उनका अध्ययन में प्रेम बढ़ता ही गया और इस प्रकार इस दृढ़व्रती ने समस्त जटिलताओं को चुनौती देकर अपने जीवन को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। उनका अध्ययन-प्रेम इतना तीव्र हो उठा कि पुराणों के उर्दू अनुवाद भी उन्होंने पढ़ डाले। जीवन-पथ पथरीला एवं कष्टकाकीर्ण था। उस पर चलते हुए पैर लहूलूहान हो गये, किन्तु उन्होंने लक्ष्य की ओर बढ़ना नहीं छोड़ा। एक सशक्त संकल्प एवं भावुक हृदय लिए वे ऊबड़-खाबड़ जीवन-पथ पर निरन्तर बढ़ते चले गये।

साहित्य-सृजन का श्रीगणेश : उर्दू में सृजन का प्रथम आयाम (1901 से 1915 तक)—श्री प्रेमचन्दजी ने कथा-साहित्य को साहित्य-सृजन का केन्द्र बनाया। कथा-साहित्य की ही प्रमुख विधा उपन्यास-लेखन से उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का समारम्भ किया। सन् 1901 ई. में उन्होंने 'प्रेमा' नामक एक उपन्यास उर्दू में लिखा। इसके पश्चात् अन्य अनेक उपन्यास लिख डाले। सन् 1904 ई. में उन्होंने कहानी रचना का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। उस समय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियाँ अत्यन्त लोकप्रिय थीं। श्री प्रेमचन्द ने पहले उन्हीं की कहानियों के उर्दू अनुवाद छपवाये, तदनन्तर स्वयं मौलिक कहानियाँ लिखने लगे। सन् 1907 ई. में उनकी प्रथम कहानी 'संसार का अनमोल रत्न' उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' में प्रकाशित हुई। इसके अनन्तर उन्होंने चार-पाँच कहानियों की ओर रचना करके अपना प्रथम कहानी-संग्रह 'सोजेवतन' सन् 1906 ई. में प्रकाशित कराया। इस संग्रह में राष्ट्रीयता मुखर थी, इसलिए सरकार ने इसे जब्त करके सारी प्रतियाँ जलवा दीं। इस संग्रह की समस्त कहानियाँ नवाबराय के नाम से लिखी गई थीं। पश्चात्वर्ती कहानियाँ उन्होंने प्रेमचन्द के नाम से लिखीं।

'सोजेवतन' के जब्त किये जाने पर भी इनका रचना-प्रवाह बना ही रहा। अब प्रेमचन्द के नाम से इनके कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए। सन् 1901 से 1915 तक का रचना-काल उर्दू रचनाओं की दृष्टि से प्रमुख है। इस बीच उन्होंने लगभग पौने दो सौ कहानियों की रचना की जो कि अनेक संग्रहों में प्रकाशित हुईं।

कहानी-रचना का द्वितीय आयाम : हिन्दी में (1916 से 1936 तक)—कई कहानी लेखकों ने बताया कि प्रेमचन्द ने हिन्दी में कहानी-रचना का कार्य श्री मन्नन द्विवेदी गज़पुरी की प्रेरणा से प्रारम्भ किया। द्विवेदीजी उस समय डोमरियागंज के तहसीलदार थे। प्रेमचन्दजी की उनसे भेंट हुई तो उन्होंने हिन्दी में कहानी रचना की प्रेरणा दी। उनसे प्रेरित होकर प्रेमचन्दजी ने अपनी कहानियों के हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया। हिन्दी में लिखते रहे। हिन्दी में उनकी लोकप्रियता दिनों-दिन बढ़ती चली गई। उनके अनेक उपन्यास और कहानी-संग्रह हिन्दी में प्रकाशित होते चले गये। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में भी उनको सम्मानपूर्ण स्थान मिला। उनका प्रथम हिन्दी कहानी संग्रह 'सप्त सरोज' था। उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यास और तीन सौ कहानियों की रचना की।

सम्पादन कार्य—प्रज्वलित स्वाभिमान से मण्डित श्री प्रेमचन्द में सम्पादन कौशल का भी उन्मेष सजग था। उन्होंने समय-समय पर 'जमाना', ज्ञान-मण्डल लिमिटेड, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'मर्यादा', 'माधुरी', 'जागरण' और 'हंस' नामक पत्रों का सम्पादन दायित्व सँभाला और उनमें साहित्य के उच्च आदर्शों को स्थान दिया। 'हंस' का प्रकाशन उन्होंने सन् 1930 ई. में प्रारम्भ किया। सन् 1930 ई. में जब वे रोग-शय्या पर पड़े थे। 'हंस' की जमानत के लिए उन्होंने पर्याप्त धन की व्यवस्था की। 'हंस' बन्द हो जाय, यह उन्हें असह्य था। अनुमान लगाया जा सकता है कि 'हंस' उन्हें कि[illegible]य था। 'हंस' की खातिर उन्होंने फिल्म जगत् में प्रवेश किया, किन्तु भाग्य का कठोर व्यंग्य कि उन्हें सफलता न मिली। मानवतावादी इस कथा-शिल्पी का चल-चित्रों के जगत् में मन ही न रमा और ये अपनी ही जगह लौट आये।

मृत्यु—इस प्रकार सन् 1936 ई. तक कथा साहित्य को ने केवल समृद्धि देकर, वरन् उसे नवीन दिशा, नवीन विषय, शिल्प एवं नवीन शैली से परिवेष्ठित कर इस कथा- शिल्पी सम्राट ने इस संसार से प्रयाण किया। साहित्य के अन्तरिक्ष से एक दीप्त सितारा सदैव को विलीन हो गया, किन्तु उसकी दीप्ति आज भी उसकी रचनाओं में अक्षुण्ण है।

व्यक्तित्व

श्री प्रेमचन्द का व्यक्तित्व विशुद्ध भारतीयता से मण्डित है। गाँधीजी के शब्दों में भारत की सच्ची तस्वीर तो भारत के गाँव हैं। श्री प्रेमचन्दजी अपने व्यक्तित्व में भारतीय ग्रामों का सच्चा स्वरूप सँजोए हुए हैं। जैसा कि उनके जीवन-वृत से स्पष्ट है, कि भारतीय कृषकों का अभावग्रस्त जीवन, दीन-हीन मजदूरों की विपन्न अवस्था सभी को उन्होंने आत्मसात किया है और हृदय में गहराई तक प्रविष्ट सहानुभूति से उनका चित्रण किया है। उन्होंने तो आँखों के समाने खुली संसार की पुस्तक के पृष्ठों को ध्यान से पढ़ा है और इन पृष्ठों में उनके हृदय को अभावग्रस्तों, सन्तप्तों एवं विपत्रों के प्रति ही विशेष सहानुभूति रही है। एक सच्चे साहित्यकार की आत्मा उनमें निवास करती है। एक विशाल संवेदना के वे मूर्तिभान प्रतीक हैं। इसी कारण वे उपन्यास एवं कहानी साहित्य को जीवन के कटु सत्य एवं यथार्थ तक उतार लाये है। उनका साहित्य जीवन की विशुद्ध व्याख्या कर सका है और उसने उपयोगी कला की सार्थकता को मूर्त रूप दिया है।

राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र-प्रेम का उनमें पूर्ण उन्मेष है। उनका प्रथम कहानी-संग्रह 'सोजेवतन' भारतीय आत्मा का प्रतिनिधित्व करने के कारण ही जब्त किया गया और उसकी सारी प्रतियाँ जला दी गयीं।

सन् 1920 ई. में गाँधीजी जब गोरखपुर पहुँचे, उस समय श्री प्रेमचन्दजी वहाँ डिप्टी इंस्पेक्टर थे। गाँधीजी के विचारों से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तुरन्त सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देकर अपनी आत्मा को पूर्ण स्वतन्त्र कर लिया। तब से साहित्य के माध्यम से उन्होंने अपनी राष्ट्रीय विचारधारा से जन-जीवन को प्रभावित किया। अँग्रेजों तथा उनके खैरख्वाँहों के अत्याचारों के सजीव चित्र उन्होंने प्रस्तुत किये। उन चित्रों के विवरण इतने स्पष्ट थे कि उनसे भारतीय जनता में क्रान्ति का जागरण हुआ। श्री प्रेमचन्दजी ने एक प्रकार से अपनी साहित्य-साधना के माध्यम से भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के संघर्ष को तीव्र किया एवं राष्ट्र-प्रेम की मशाल को प्रदीप्त किया। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजी तथा अपने युग के समाज-सुधारवादी राजा राममोहन राय ने भी मुन्शी प्रेमचन्दजी को प्रभावित किया। प्रेमचन्दजी का कथा-साहित्य गाँधी, दयानन्द एवं राजा राममोहन राय—इन तीनों के विचारों की त्रिवेणी है। वे अपने साहित्य के माध्यम से किसी गाँधी, किसी दयानन्द, किसी राजा राममोहन राय से कम नहीं हैं। उक्त तीनों युग प्रवर्तकों के समन्वित दृष्टिकोणों को अपनी साहित्यिक कृतियों में प्रस्तुत करने के कारण ही वे युग-प्रतिनिधि कलाकार माने जाते हैं। समस्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक आन्दोलन उनके साहित्य में मुखर है। हिन्दू-मुस्लिम एकता, अनमेल विवाह, वेश्या-उद्धार, ग्राम-सुधार, आर्थिक शोषण, छुआछूत, विधवा-विवाह, संयुक्त परिवार की समस्याएँ, कलह और उलझनें, पुलिस के हथकण्डे, घूसखोरी, मुकद्दमेबाजी, मद्य-निषेध, अँग्रेज शासकों की हृदयहीनता, कृषकों की दलितावस्था, समाज के ढोंगियों का पर्दाफाश, राष्ट्र-प्रेम, संगठन, सत्याग्रह सभी की यथार्थ स्थिति का चित्रण उनके साहित्य में विद्यमान है। इससे स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के अकेले व्यक्तित्व में उनका सारा युग समाविष्ट है और निस्सन्देह उन्हें युग-प्रतिनिधि व्यक्तित्त्व मिला है।

कृतित्व

श्री प्रेमचन्दजी ने अपनी साहित्य-साधना में यद्यपि गद्य साहित्य की अनेक विधाओं को स्पर्श किया है, किन्तु वास्तव में तो वे कथा-शिल्पी ही हैं। अपने इस क्षेत्र के, एकमात्र सम्राट हैं। उनके कृतित्व का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

उपन्यास—श्री प्रेमचन्दजी के जीवनी-लेखकों के आधार पर उन्होंने (प्रेमचन्दजी ने) श्री महावीर प्रसाद पोद्दार की प्रेरणा से **'सेवासदन'** नामक उपन्यास हिन्दी में लिखा और तब से वे निरन्तर हिन्दी में लिखते चले गये। उनकी लोकप्रियता अनुदिन बढ़ती चली गई। इसके पश्चात् उन्होंने 'रूठी रानी', 'कृष्णा', 'वरदान' और 'प्रतिज्ञा' आदि उपन्यासों की रचना की। इन्हें 1900 से 1906 ई. के बीच की रचनाएँ माना गया है। 'सेवासदन' उनकी तीसरी औपन्यासिक रचना है, जिसे गोरखपुर में सन् 1916 ई. में प्रकाशित किया गया। उनके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'प्रेमाश्रम' का रचनाकाल सन् 1918 ई. है, किन्तु इसका

प्रकाशन सन् 1922 ई. में कलकत्ते से हुआ। 'निर्मला' का प्रणयन-काल 1923 ई. है। सन् 1927 ई. में इसका लखनऊ से प्रकाशन हुआ। 'रंग-भूमि' का रचना-काल सन् 1924-25 ई. है। इसका प्रकाशन-कार्य सर्वप्रथम लखनऊ में सम्पन्न हुआ। सन् 1928 ई. में 'कायाकल्प' और सन् 1930 ई. में 'गबन' के प्रकाशन हुए। 'कर्म-भूमि' और 'गोदान' क्रमशः सन् 1932 ई. और सन् 1936 ई. में बनारस में प्रकाशित हुए। श्री प्रेमचन्दजी का अन्तिम उपन्यास 'मंगल-सूत्र' जिसकी कि रचना वे 1936 ई. में कर रहे थे, उनकी मृत्यु के कारण अपूर्ण रह गया। क्रम से इन उपन्यास-रचनाओं का नामोल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

उपन्यास-रचनाएँ—सेवासदन, कृष्णा, वरदान, प्रतिज्ञा, प्रेमाश्रम, निर्मला, रंग-भूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान और अन्तिम अपूर्ण उपन्यास मंगल-सूत्र।

कहानी साहित्य—कथा-साहित्य की उपन्यास-विधा को तो प्रेमचन्दजी की लेखनी ने समृद्ध किया ही, इसके अतिरिक्त उन्होंने कहानियों की रचना कर कहानी साहित्य के भण्डार में असाधारण वृद्धि की। इनके अनेक कहानी संग्रह उर्दू तथा हिन्दी में प्रकाशित हुए जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

उर्दू कहानी-संग्रह—जैसा कि पूर्वोल्लेख किया जा चुका है, प्रेमचन्दजी ने कहानी-लेखन का कार्य उर्दू से प्रारम्भ किया है। सन् 1901 ई. से सन् 1916 ई. तक लिखे गये उर्दू कहानी-संग्रह निम्नलिखित हैं, जिनमें लगभग पौने दो सौ कहानियाँ संग्रहीत हैं—

सोजेवतन, प्रेम-पचीसी, प्रेम-बतीसी, प्रेम-चालीसा, खाके-परवाना, फिरदौस-ए-खयाल, फिरजोदराह, दूध की कीमत, पारवाज-खयाल, खाके-खयाल और नजात।

हिन्दी कहानी-संग्रह—सन् 1916 ई. में प्रेमचन्दजी ने हिन्दी में कहानी लेखन का कार्य प्रारम्भ किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास की यह घटना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जबकि हिन्दी कथा-साहित्य को एक युग-प्रवर्तनकारी प्रतिभा मिली। श्री प्रेमचन्दजी ने सन् 1916 से सन् 1936 ई. तक लगभग तीन सौ कहानियों की रचना करके हिन्दी कहानी-साहित्य को नवीन दृष्टि और नवीन दिशा प्रदान की। उनके प्रमुख हिन्दी कहानी-संग्रह निम्नलिखित हैं—

(1) सप्त सरोज (1917 ई., गोरखपुर), (2) नवनिधि (1918 ई., बम्बई), (3) प्रेम पूर्णिमा (1918 ई., कलकत्ता), (4) बड़े घर की बेटी (1921 ई., कलकत्ता), (5) लाल फीता (1921 ई., कलकत्ता), (6) नमक का दारोगा (1921 ई., कलकत्ता), (7) प्रेम-पचीसी (1923 ई., कलकत्ता), (8) प्रेम-प्रसून (1924 ई., लखनऊ), (9) प्रेम-द्वादशी (1926 ई., लखनऊ), (10) प्रेम-प्रतिमा (1926 ई., बनारस), (11) प्रेम-प्रमोद (1926 ई., इलाहाबाद), (12) प्रेम-तीर्थ (1926 ई., बनारस), (13) पाँच फूल (1929 ई., बनारस), (14) प्रेम-चतुर्थी (1929 ई., कलकत्ता), (15) प्रेम-प्रतिज्ञा (1929 ई., बनारस) (16) सप्त सुमन (1930 ई., बनारस), (17) प्रेम-पंचमी (1930 ई., लखनऊ), (18) प्रेरणा (1932 ई., बनारस), (19) समर-यात्रा (1932 ई., बनारस और कलकत्ता), (20) पंच-प्रसून (1934 ई., कलकत्ता), (21) नवजीवन (1935 ई. कलकत्ता),

(22) बैंक का दिवाला (1924 ई., कलकत्ता), (23) शान्ति (1927 ई., कलकत्ता), (24) अग्नि-समाधि (1929 ई., लखनऊ), (25) कफन और शेष रचनाएँ (1927 ई., बनारस), (26) नारी जीवन की कहानियाँ (1928 ई., बनारस), (27) गल्परत्न (1929 ई., बनारस) (28) प्रेम-पीयूष (1931 ई., बनारस), (29) प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ (1932 ई., लाहौर), (30) गल्प-समुच्चय (1928 ई.), (31) हिन्दी की आदर्श कहानियाँ (1927 ई., बनारस), (32) गल्प-संसार-माला (1928 ई., बनारस), (33) ग्राम्य जीवन की कहानियाँ, (रचना-काल अज्ञात), (34) प्रेमचन्द की समस्त कहानियों का संग्रह 'मान-सरोवर' नाम से आठ भागों में सरस्वती प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुआ है।

गद्य की अन्य-अनेक विधाओं के जीव प्रेमचन्दजी की लेखनी—प्रेमचन्द न केवल उपन्यासकार एवं कहानीकार थे, वरन् उन्होंने नाटक, निबन्ध तथा जीवनियाँ भी लिखीं। अनुवादक एवं सम्पादक के रूप में भी वे साहित्य-जगत् में प्रख्यात हुए। उनका 'संग्राम' नामक नाटक सन् 1923 ई. में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। 'कर्बला' तथा 'प्रेम की वेदी' शीर्षक नाटक सन् 1924 ई. तथा सन् 1933 ई. में क्रमशः लखनऊ और बनारस से प्रकाशित हुए। उन्होंने आलोचनात्मक लेख भी लिखे जो 'जागरण' तथा 'हंस' की फाइलों में सुरक्षित हैं। इस प्रकार के कुछ आलोचनात्मक निबन्ध 'कुछ विचार' शीर्षक संग्रह में सन् 1939 ई. में बनारास से प्रकाशित हो चुके हैं। सम्पादक के रूप में इन्होंने 'जागरण' तथा 'हंसा' नामक दो पत्रिकाओं का सम्पादन किया ही है। जीवनी-लेखक के रूप में इनकी 'महात्मा शेख सादी', 'दुर्गादास' और 'कलम, तलवार और त्याग' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। 'जीवनसार' नामक आत्म-कहानी प्रेमचन्द ने सन् 1932 ई. में 'हंस' के आत्मकथांक में प्रस्तुत की।

श्री प्रेमचन्द का अनूदित कार्य भी प्रभूत मात्रा में है। अथक साहित्य-साधना के क्षणों में इन्होंने, सुखदास, टाल्सटाय की कहानियाँ, अहंकार, आजाद कथा, हड़ताल, चाँदी की डिबिया, न्याय और सृष्टि का आरम्भ अनूदित ग्रन्थ प्रस्तुत किये।

बालोपयोगी साहित्य—प्रेमचन्दजी के ग्रन्थों की विषय-परिधि अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने बालोपयोगी साहित्य की भी रचना की है। बालोपयोगी ग्रन्थों में मन-मोदक, कुत्ते की कहानी, जंगल की कहानियाँ, रामचर्चा तथा दुर्गादास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्फुट रचनाओं में स्वराज्य के फायदे विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

प्रेमचन्द की अधिक लोकप्रिय कहानियाँ—विभिन्न कहानी-संग्रहों में जिन कहानियों की साहित्य-लोक में विशेष चर्चा है, वे अधिक लोकप्रिय कहानियाँ—बड़े घर की बेटी, पंच परमेश्वर, नमक का दारोगा, परीक्षा, रानी सारन्धा, ममता, अमावस्या की रात्रि, वज्रपात, मैकू, मुक्ति का मार्ग, शतरंज के खिलाड़ी, डिगरी के रुपये, दुर्गा का मन्दिर, आत्माराम, मिस पद्मा, अलगोझा, नशा, सुजान भगत, कफन, मनोवृत्ति, घास वाली, मुल्ली डण्डा, बूढ़ी काकी, पूस की रात, दो बैलों की कथा, बड़े भाई साहब, ईदगाह, एक्ट्रेस, जुलूस, लाल फीता, बैंक का दिवाला, नाग-पूजा, गुप्त धन, बलिदान, गृह-दाह, गरीबी की हाय, धर्म-संकट, दो कब्रें, नशा विवाह और जादू आदि हैं।